

आदिवासी महिला नेतृत्व का उद्भव एवं विकास (1990-2020)

प्रीति खेस¹, डॉ० आलोक कुमार²

¹ शोधार्थी – वाई० वी० एन० विश्वविद्यालय , राँची

² शोध निर्देशक - वाई० वी० एन० विश्वविद्यालय , राँची

सारांश

आदिवासी समाज में महिलाओं की भूमिका परंपरागत रूप से सामूहिक, श्रम आधारित और सामाजिक समरसता पर आधारित रही है, परंतु उन्हें निर्णायक नेतृत्व की मुख्यधारा से लंबे समय तक अलग रखा गया। 1990 के पश्चात भारत में राजनीतिक विकेंद्रीकरण, पंचायती राज व्यवस्था का सशक्तिकरण और महिलाओं को आरक्षण देने जैसे संविधानिक उपायों ने आदिवासी महिलाओं के नेतृत्व को एक नई दिशा दी। इन परिवर्तनों ने उन्हें केवल मतदान कर्ता से एक प्रभावशाली निर्णयकर्ता की भूमिका में लाने का मार्ग प्रशस्त किया। झारखंड, छत्तीसगढ़, ओडिशा और पश्चिम बंगाल जैसे राज्यों में आदिवासी महिलाओं ने शिक्षा, स्वास्थ्य, जल-जंगल-जमीन जैसे बुनियादी मुद्दों पर संघर्ष करते हुए न केवल अपने समुदाय की आवाज उठाई, बल्कि राज्य और राष्ट्रीय स्तर की राजनीति में भी सक्रिय भागीदारी शुरू की। 1990 के दशक में जब आदिवासी क्षेत्रों में साक्षरता और सामाजिक चेतना का उभार हुआ, वहीं महिलाओं के अधिकारों, समानता और नेतृत्व की संभावनाओं ने भी आकार लेना शुरू किया।

नब्बे के दशक के उत्तरार्द्ध में भूमि अधिग्रहण, खनन और विस्थापन विरोधी आंदोलनों में आदिवासी महिलाओं की मुखर भूमिका ने उन्हें सामाजिक आंदोलनों के केंद्र में ला दिया। बिरसा मुंडा और सिद्धो-कान्हू की विरासत को आत्मसात करते हुए इन महिलाओं ने न केवल नेतृत्व किया, बल्कि समुदाय को वैकल्पिक विकास की चेतना भी प्रदान की। एक ओर जहाँ ग्राम सभा की बैठकों में उनकी उपस्थिति औपचारिक रूप से बढ़ी, वहीं दूसरी ओर उन्होंने पारंपरिक सत्ता संरचनाओं को भी चुनौती दी। सन् 2000 में झारखंड राज्य के गठन के पश्चात आदिवासी महिलाओं को अपनी पहचान के साथ नेतृत्व करने के अधिक अवसर प्राप्त हुए। राज्य के भीतर महिला मुखियाओं, पंचायत प्रतिनिधियों और जन आंदोलनों की अगुवाई करने वाली महिलाओं की संख्या में निरंतर वृद्धि हुई। हालांकि, पितृसत्तात्मक सोच, शिक्षा की कमी, संसाधनों का अभाव और राजनीतिक संरचनाओं में पुरुष वर्चस्व जैसी चुनौतियाँ अभी भी उनके मार्ग में बाधाएं प्रस्तुत करती हैं।

मुख्य शब्द: आदिवासी महिला, पंचायती राज, महिला आरक्षण, सामाजिक चेतना, जंगल-जमीन, झारखंड, सामाजिक आंदोलन, राजनीतिक सहभागिता, सशक्तिकरण

सांस्कृतिक विरासत

वर्ष 2020 तक आते-आते यह देखा गया कि आदिवासी महिला नेतृत्व केवल ग्रामसभा या पंचायतों तक सीमित नहीं रहा, बल्कि उन्होंने NGO, सामाजिक आंदोलनों, शिक्षा संस्थानों और मीडिया जैसे क्षेत्रों में भी अपनी प्रभावशाली उपस्थिति दर्ज कराई। इसने आदिवासी समाज में महिलाओं के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने का कार्य किया। उनका नेतृत्व अब केवल संघर्ष तक सीमित न रहकर परिवर्तन और विकास का प्रतीक बन चुका है। आदिवासी महिला नेतृत्व ने न केवल सामाजिक न्याय की अवधारणा को पुनः परिभाषित किया है, बल्कि लोकतंत्र की जड़ों को भी मजबूत किया है। यह एक सतत प्रक्रिया है, जिसमें निरंतर समर्थन, प्रशिक्षण, अवसर और समाज की सोच में बदलाव आवश्यक है, ताकि यह नेतृत्व और अधिक सशक्त, न्यायपूर्ण और समावेशी बन सके। झारखंड के आदिवासी समाज

में महिला नेतृत्व का उद्भव 1990 के बाद एक निर्णायक मोड़ पर पहुँचा, जब पंचायती राज में महिलाओं के लिए आरक्षण लागू हुआ। इसके पश्चात आदिवासी महिलाओं ने धीरे-धीरे पंचायतों, सामाजिक संगठनों, आंदोलनों और साहित्यिक मंचों पर अपनी उपस्थिति दर्ज करानी शुरू की। यह अध्याय इस ऐतिहासिक प्रक्रिया को केस स्टडी के माध्यम से रेखांकित करता है। झारखंड, जो 15 नवंबर 2000 को भारत के 28वें राज्य के रूप में स्थापित हुआ, एक खनिज-समृद्ध, सांस्कृतिक रूप से विविध और आदिवासी बहुल राज्य है। यहां की कुल आबादी में लगभग 26% आदिवासी समुदाय शामिल है, जिनमें संथाल, मुंडा, उरांव, हो, बिरजिया, असुर, परहिया, और अन्य जनजातियाँ प्रमुख हैं। झारखंड की सामाजिक संरचना में आदिवासी समुदाय की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है, किन्तु पारंपरिक सामाजिक ढांचे और पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने महिलाओं की भागीदारी को लंबे समय तक सीमित रखा। झारखंड और भारत के अन्य आदिवासी क्षेत्रों में आदिवासी महिला नेतृत्व का जो स्वरूप आज हमारे सामने है, वह अचानक विकसित नहीं हुआ, बल्कि इसके पीछे एक लंबी सामाजिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक प्रक्रिया रही है। इस विकासक्रम में आदिवासी आंदोलनों और विशेष रूप से ऐतिहासिक विद्रोहों में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी ने एक सशक्त नींव प्रदान की। इन विद्रोहों में महिलाओं की जो भूमिका रही, वह नेतृत्व की दृष्टि से प्रेरक रही और आगे चलकर 1990 के बाद के वर्षों में आदिवासी महिला नेतृत्व की एक सशक्त धारा के रूप में सामने आई।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में आदिवासी विद्रोह और महिला सहभागिता

भारत में 18वीं और 19वीं शताब्दी के दौरान हुए अनेक आदिवासी विद्रोहों में महिलाओं ने न केवल भाग लिया, बल्कि कई बार नेतृत्वकारी भूमिका भी निभाई। झारखंड, छत्तीसगढ़, ओडिशा और बंगाल के जंगलों और पहाड़ियों में बसे आदिवासी समाजों ने जब ब्रिटिश उपनिवेशवाद, ज़मींदारी प्रथा, और सामाजिक अन्याय का विरोध किया, तो महिलाएं इन संघर्षों में कंधे से कंधा मिलाकर खड़ी रहीं।

चाहे वह 1784 का तिलका मांझी का विद्रोह हो या 1831-32 का कोल विद्रोह, 1855-56 का संथाल विद्रोह या फिर 1857 की महान क्रांति, हर जगह आदिवासी महिलाओं की उपस्थिति रही। इन संघर्षों में महिलाएं केवल प्रेरणास्त्रोत नहीं थीं, बल्कि वे रणनीति, संगठन और प्रतिरोध की वास्तविक नेतृत्वकर्ता भी बनीं। फूलो और झानो जैसे नाम इस परिप्रेक्ष्य में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने संथाल विद्रोह के दौरान न केवल ब्रितानी सेना से लोहा लिया, बल्कि हजारों महिलाओं को संगठित कर प्रतिरोध की एक लहर चला दी। इन ऐतिहासिक घटनाओं ने आदिवासी समाज में महिला नेतृत्व की जड़ों को और अधिक मज़बूत किया।

आदिवासी समाज में परंपरागत रूप से सामूहिकता, श्रम विभाजन और लैंगिक समानता की धारणा अधिक प्रबल रही है। हालांकि आधुनिक काल में इन आदर्शों पर बाहरी प्रभावों के कारण क्षरण हुआ, लेकिन फिर भी महिलाओं को निर्णय प्रक्रिया में सम्मिलित किया जाना आदिवासी संस्कृति की विशेषता रही है। महिलाएं जल, जंगल और ज़मीन के संघर्षों की प्रथम पंक्ति में रही हैं क्योंकि इनसे उनका अस्तित्व सीधे जुड़ा है। अतः जब-जब प्राकृतिक संसाधनों पर संकट आया, आदिवासी महिलाओं ने इसका प्रतिरोध किया और नेतृत्वकारी भूमिका में आईं।

1990 के दशक के बाद का समय सामाजिक और राजनीतिक दृष्टि से परिवर्तन का काल रहा। भारत में पंचायती राज व्यवस्था में 73वें संविधान संशोधन के तहत महिलाओं को आरक्षण मिलने के साथ ही आदिवासी महिलाओं को भी पहली बार राजनीतिक प्रतिनिधित्व के अवसर मिलने लगे।

हालांकि यह आरंभिक नेतृत्व प्रायः 'प्रॉक्सी' प्रतिनिधित्व की शिकार रहा, लेकिन धीरे-धीरे महिलाओं ने प्रशासनिक कार्यों में स्वयं को स्थापित करना शुरू किया। इन नेतृत्वकर्ताओं ने शिक्षा, स्वास्थ्य, महिला अधिकार, ग्राम विकास और जल-जंगल-जमीन के मुद्दों को लेकर स्थानीय प्रशासन पर दबाव बनाना शुरू किया।

समकालीन सामाजिक आंदोलनों में भागीदारी

नब्बे के दशक में झारखंड अलग राज्य आंदोलन एक बड़ा मोड़ था। इस आंदोलन में हजारों आदिवासी महिलाओं ने भाग लिया और एक सशक्त राजनीतिक चेतना का परिचय दिया। आंदोलन के दौरान महिलाओं ने न केवल धरना, प्रदर्शन और रैली में भाग लिया, बल्कि रणनीति तय करने, बैठकें आयोजित करने, और जनमत को प्रभावित करने जैसे कार्यों में भी सक्रिय भूमिका निभाई। भूमि अधिग्रहण, खनन परियोजनाओं, वनाधिकार, विस्थापन और पर्यावरणीय संकटों के विरोध में जो आंदोलन चले, उनमें भी आदिवासी महिलाओं की भागीदारी ने उनके नेतृत्व को मजबूती दी।

आदिवासी महिला नेतृत्व प्रायः सामूहिक और विकेन्द्रीकृत होता है, जो उनके सामाजिक-सांस्कृतिक ढांचे के अनुकूल है। यह नेतृत्व अधिकार आधारित नहीं, उत्तरदायित्व आधारित होता है। ऐसे नेतृत्वकर्ता अपने समुदायों के साथ संवाद करते हैं, लोक परंपराओं को ध्यान में रखते हैं और सामाजिक न्याय की अवधारणाओं को प्राथमिकता देते हैं।

1990 से 2020 के बीच आदिवासी महिला नेतृत्व का जो विकास हुआ, वह केवल संविधान प्रदत्त आरक्षण या बाह्य प्रोत्साहनों का परिणाम नहीं था। इसकी जड़ें बहुत गहराई तक फैली हुई थीं – इतिहास के उन पन्नों में जहां फूलो-झानो जैसी नायिकाएं प्रतिरोध की मशाल लेकर खड़ी थीं, उन आंदोलनों में जहां आदिवासी महिलाएं अपनी मिट्टी, संस्कृति और अस्तित्व के लिए लड़ रही थीं।

आज जब हम आदिवासी महिला नेतृत्व की बात करते हैं, तो हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि इसका आधार केवल राजनीतिक प्रतिनिधित्व नहीं है, बल्कि यह एक ऐतिहासिक संघर्ष और सामाजिक चेतना की उपज है। यह नेतृत्व ना केवल एक समुदाय को दिशा देता है, बल्कि संपूर्ण लोकतांत्रिक व्यवस्था को अधिक समावेशी और न्यायसंगत बनाने की दिशा में कार्य करता है। लेकिन 1990 के दशक के बाद भारत में लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण, पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं के लिए आरक्षण, तथा राज्य गठन की प्रक्रिया जैसे विभिन्न राजनीतिक-सामाजिक परिवर्तन झारखंड की आदिवासी महिलाओं के जीवन और नेतृत्व में उल्लेखनीय परिवर्तन लाए। विशेष रूप से 73वें संविधान संशोधन (1992) और झारखंड राज्य के गठन (2000) के बाद आदिवासी महिलाओं को सामाजिक एवं राजनीतिक नेतृत्व में शामिल होने का अवसर प्राप्त हुआ।

1990 से 2020 ई० की अवधि झारखंड में आदिवासी महिला नेतृत्व के उद्भव और विकास की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। यह कालखंड उन ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक बदलावों का साक्षी रहा, जिन्होंने आदिवासी महिलाओं के नेतृत्व को एक नई पहचान दी। परंपरागत रूप से आदिवासी समाज में महिलाओं की भूमिका घरेलू और सांस्कृतिक सीमाओं तक ही सीमित रही थी, लेकिन धीरे-धीरे यह भूमिका राजनीतिक मंचों पर भी स्पष्ट रूप से उभरने लगी। झारखंड में आदिवासी महिलाएं पंचायतों, ग्राम सभाओं, सामाजिक आंदोलनों, स्वयंसेवी संगठनों और जनजातीय परिषदों में अपनी सक्रिय भागीदारी से सामाजिक परिवर्तन की प्रतीक बनी हैं। वे अब केवल संघर्ष का हिस्सा नहीं रहीं, बल्कि नेतृत्वकर्ता के रूप में सामने आईं।

इस शोधकार्य का उद्देश्य झारखंड में 1990 से 2020 के बीच आदिवासी महिला नेतृत्व के उद्भव और विकास का विश्लेषण करना है। यह विश्लेषण न केवल राजनीतिक नेतृत्व की दिशा में केंद्रित है, बल्कि सामाजिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक और आर्थिक नेतृत्व के संदर्भ में भी है। नीचे झारखंड और आसपास के आदिवासी क्षेत्रों की कुछ उल्लेखनीय

महिला नेताओं की केस स्टडी और जीवन कहानियाँ दी जा रही हैं, जिन्होंने 1990 से 2020 के दौरान सामाजिक, राजनीतिक, पर्यावरणीय और सांस्कृतिक आंदोलनों में नेतृत्व किया और आदिवासी महिला नेतृत्व के विकास को ठोस आधार दिया। ऐसे नेतृत्व की प्रेरणा आदिवासी इतिहास के उन पृष्ठों से मिली है, जहां फूलो-झानो, गंगा नारायण और बिरसा मुंडा जैसे नायकों की संघर्षगाथाओं में महिलाओं की मौन किंतु सशक्त उपस्थिति रही है।

1. ऐतिहासिक कारक

बिरसा आंदोलन (1895–1900): बिरसा मुंडा के नेतृत्व में हुए इस जनआंदोलन में महिलाओं की भागीदारी ने यह स्पष्ट किया कि वे केवल घरेलू जीवन तक सीमित नहीं थीं, बल्कि सामूहिक संघर्ष की भी सक्रिय सहभागी थीं। बिरसा आंदोलन या 'उलगुलान' (महाविद्रोह) भारतीय इतिहास का वह अध्याय है, जिसमें झारखंड के आदिवासियों ने औपनिवेशिक शासन, ज़मींदारी व्यवस्था और मिशनरी गतिविधियों के खिलाफ संगठित प्रतिरोध किया। इस आंदोलन का नेतृत्व बिरसा मुंडा ने किया, जो अपने युग के एक क्रांतिकारी नेता, धार्मिक पुनरुत्थानकर्ता और जननायक के रूप में प्रसिद्ध हुए। परंतु इस आंदोलन की एक ऐसी परत भी है, जो अक्सर ऐतिहासिक वर्णनों में उपेक्षित रह जाती है वह है आदिवासी महिलाओं की सक्रिय, साहसी और संगठित भागीदारी। बिरसा आंदोलन महज राजनीतिक या धार्मिक आंदोलन नहीं था, बल्कि यह आदिवासी अस्तित्व, अस्मिता और आत्मनिर्भरता की लड़ाई थी। इस संघर्ष में आदिवासी महिलाओं ने जो भूमिका निभाई, वह केवल सहायक नहीं बल्कि निर्णायक रही। उनकी भागीदारी नेतृत्व, संगठन, संवाद, प्रतीकात्मक शक्ति और प्रतिरोध की गहरी भावना से ओतप्रोत थी।

बिरसा मुंडा ने जिस सामाजिक और धार्मिक चेतना का प्रसार किया, वह केवल पुरुषों तक सीमित नहीं थी। उन्होंने विशेष रूप से महिलाओं से शराब त्यागने, मिशनरी प्रभाव से दूर रहने, पारंपरिक पहनावे और रीति-नीति का पालन करने की बात कही। महिलाओं ने इस संदेश को न केवल अपनाया, बल्कि घर-घर जाकर इसे फैलाया। वे आंदोलन की प्रचारक बनीं, संगठनकर्ता बनीं और कभी-कभी रक्षक भी बनीं। बिरसा आंदोलन में महिलाएं पर्व-त्योहारों, मेलों और धार्मिक आयोजनों के माध्यम से जनजागरण का कार्य करती थीं। उन्होंने गीतों, कहावतों और लोकनाट्यों के माध्यम से बिरसा के संदेश को समाज में जीवंत बनाए रखा। इस सांस्कृतिक कार्य के ज़रिए उन्होंने आंदोलन को जनआंदोलन का रूप देने में अद्वितीय भूमिका निभाई। वे आंदोलन की आत्मा बन गईं बिना मंच पर आए, उन्होंने हजारों की भीड़ को संगठित किया।

कई मौकों पर जब अंग्रेजी पुलिस या जमींदारों के गुंडों ने बिरसा समर्थकों को पकड़ने के लिए गांवों पर हमला किया, तो महिलाओं ने मोर्चा संभाला। वे अपने पुरुष साथियों को छिपाने, पुलिस को गुमराह करने और भोजन-जल जैसी आवश्यक चीज़ें पहुँचाने का काम करती थीं। आंदोलन के कई गुप्त ठिकानों को बचाने में महिलाओं की प्रमुख भूमिका रही। इतिहास में दर्ज घटनाओं के अनुसार, अनेक आदिवासी महिलाएं अंग्रेजों की गोलियों का सामना करते हुए वीरगति को प्राप्त हुईं।

बिरसा मुंडा का यह स्पष्ट निर्देश था कि महिलाएं समाज की रीढ़ हैं, और यदि आंदोलन को टिकाऊ बनाना है तो उन्हें साथ लेना अनिवार्य है। उन्होंने अपने प्रवचनों में महिलाओं को आत्मगौरव, संयम और संगठन का पाठ पढ़ाया। यही कारण था कि आंदोलन में आदिवासी स्त्रियाँ न केवल सहभागी बनीं, बल्कि जनजागरण की धार भी।

बिरसा आंदोलन में आदिवासी महिलाओं की भागीदारी एक उदाहरण है कि किस प्रकार एक सांस्कृतिक चेतना से जुड़ी महिलाएं एक सामाजिक क्रांति की सह-नायिका बन सकती हैं। वे आज भी झारखंड के आदिवासी समुदाय की स्मृति में आदर्श और प्रेरणा के रूप में जीवित हैं।

संथाल विद्रोह में महिलाओं की भूमिका किसी भी दृष्टिकोण से गौण नहीं थी। जब अंग्रेजी सेना ने विद्रोह को कुचलने के लिए हिंसक दमन शुरू किया, तब संथाल महिलाओं ने अपने घरों को मोर्चा बना लिया। वे धनुष-बाण, कुल्हाड़ी, लाठी और पारंपरिक हथियारों से लैस होकर अंग्रेजों का सामना करने लगीं। कई महिलाओं ने अपने परिवार के पुरुषों के साथ जंगलों में युद्ध किया, कूटनीति की योजनाओं में भाग लिया और अंग्रेजों की जासूसी के खिलाफ गुप्त सूचनाएं एकत्र कर आंदोलनकारियों को भेजीं। जब पुरुष युद्धभूमि में गए, तो महिलाओं ने गाँवों की रक्षा की, भोजन, जल और औषधियों की व्यवस्था की।

संथाल समाज की संस्कृति में महिलाएं गीत, नृत्य और कथा परंपरा की संवाहक होती हैं। उन्होंने लोकगीतों, नृत्यों और पूजा-पद्धतियों के माध्यम से विद्रोह की चेतना को जन-जन तक पहुँचाया। आंदोलन को मज़बूती देने के लिए कई महिला कलाकारों और पुजारिनों ने संथाली देवताओं का आवाहन किया और वीर रस के गीतों के माध्यम से लोगों को संगठित किया। आंदोलन के दौरान महिलाओं द्वारा गाए गए विद्रोही गीत आज भी झारखंड और बंगाल की लोककथाओं में सुनाई देते हैं।

प्रमुख महिलाओं की भूमिका और नाम

1. फूलो मुर्मू और झानो मुर्मू: फूलो और झानो मुर्मू, सिद्ध और कान्हू की सहयोगी थीं और स्वयं एक वीरांगना के रूप में विद्रोह में सम्मिलित हुईं। उन्होंने महिला सेनाओं का नेतृत्व किया और युद्ध में अंग्रेज सैनिकों से लोहा लिया। संथाल विद्रोह के दौरान वे उस दौर की पहली महिला योद्धाओं में गिनी जाती हैं, जिन्होंने खुलकर अंग्रेजी सेना से लड़ाई की और वीरगति को प्राप्त हुई। आज संथाल समाज में उन्हें देवी के रूप में पूजा जाता है। इन दोनों बहनों ने संथाल महिलाओं को संगठित किया, प्रतिरोध को घर-घर तक पहुँचाया और एक संगठित महिला शक्ति का निर्माण किया।

2. चंदमनी मुर्मू: चंदमनी मुर्मू एक और उल्लेखनीय नाम है, जो संथाल समाज में एक धार्मिक महिला के रूप में जानी जाती थीं। उन्होंने आंदोलन के दौरान धार्मिक सभाओं में लोगों को मानसिक रूप से तैयार किया और संथाली देवताओं के नाम पर संघर्ष को धर्मयुद्ध की संज्ञा दी। उनका कार्य आंदोलन को सांस्कृतिक और आध्यात्मिक बल देना था, जिससे हजारों लोग विद्रोह में सम्मिलित हुए।

3. माखी मुर्मू: माखी मुर्मू एक महिला योद्धा थीं, जिन्होंने धनुष-बाण से लड़ने में दक्षता प्राप्त की थी। उन्होंने अंग्रेजों की एक टुकड़ी पर हमला किया था जब वे गाँव में आगजनी करने आए थे। हालांकि उन्हें बाद में पकड़ लिया गया और फाँसी दी गई, लेकिन संथाल इतिहास में उनका नाम आज भी सम्मानपूर्वक लिया जाता है।

महिलाओं की भूमिका की प्रकृति

संथाल विद्रोह में महिलाओं की भूमिका केवल एक युद्धक्षेत्र की सहायक नहीं थी। उन्होंने आंदोलन के विचार को घर-घर पहुँचाया बच्चों और बुजुर्गों की सुरक्षा की जिम्मेदारी संभाली। नदियों, जंगलों और पहाड़ियों के रास्तों से संचार व्यवस्था का संचालन किया। घायल विद्रोहियों की देखभाल और पारंपरिक औषधियों से उपचार किया। फसलें काटकर सेना के लिए अन्न की व्यवस्था की और सबसे महत्वपूर्ण, उन्होंने यह सिद्ध किया कि संथाल स्त्रियाँ केवल परिवार की रक्षक नहीं, समाज की अग्रणी सेनानी भी बन सकती हैं।

संथाल विद्रोह में महिलाओं की भूमिका इतिहास की पाठ्यपुस्तकों में अपेक्षित स्थान नहीं पा सकी। परंतु लोकगीतों, नृत्य-नाट्य परंपराओं और आदिवासी जनश्रुतियों में फूलो-झानो जैसे नाम आज भी श्रद्धा और प्रेरणा से लिए जाते हैं। झारखंड राज्य ने फूलो-झानो के सम्मान में कई योजनाएँ, पार्क, छात्रवृत्तियाँ और स्मारक स्थापित किए हैं।

2019 में झारखंड सरकार ने "फूलो-झानो आशीर्वाद योजना" नामक महिला सशक्तिकरण योजना शुरू की, जो इस ऐतिहासिक योगदान को आधुनिक सामाजिक योजनाओं से जोड़ने का प्रयास है। संथाल विद्रोह में महिलाओं की भागीदारी ने यह साबित कर दिया कि आदिवासी आंदोलन केवल पुरुषों का नेतृत्व नहीं था, बल्कि उसमें स्त्रियों की सक्रियता, बलिदान और संगठन शक्ति शामिल थी। फूलो-झानो, चंदमनी, माखी मुर्मू जैसी वीरांगनाएँ उस साहस, चेतना और बलिदान की प्रतीक हैं, जो संथाल समाज की आत्मा में आज भी विद्यमान हैं।

यह इतिहास हमें सिखाता है कि जब भी कोई समुदाय अपने अस्तित्व, संस्कृति और अधिकारों के लिए उठ खड़ा होता है, तो उसकी स्त्रियाँ केवल प्रेरणा नहीं होतीं वे स्वयं परिवर्तन की धुरी बन जाती हैं। संथाल विद्रोह में आदिवासी महिलाओं की यह भूमिका भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की नींव का एक अनदेखा किन्तु अटूट स्तंभ है, जिसे पुनः पढ़ने, पहचानने और सम्मान देने की आवश्यकता है।

उपनिवेशवाद के विरुद्ध संघर्ष

ब्रिटिश शासन द्वारा भूमि छीनने, वनाधिकार सीमित करने और आदिवासी समाज के ढाँचे को तोड़ने की कोशिशों ने आदिवासी महिलाओं को राजनीतिक चेतना की ओर अग्रसर किया। स्त्रियाँ पारंपरिक भूमि अधिकारों से वंचित किए जाने पर अपने समुदायों के साथ धरना, आंदोलन एवं संघर्ष में शामिल हुईं। भारत में उपनिवेशवाद के विरुद्ध संघर्ष को जब भी स्मरण किया जाता है, तब प्रमुखता से महात्मा गांधी, नेताजी सुभाष चंद्र बोस, भगत सिंह जैसे महानायकों की चर्चा होती है। किंतु एक बड़ी सच्चाई यह है कि इस संघर्ष की जड़ें और व्यापक स्वरूप भारत के आदिवासी क्षेत्रों में बहुत पहले से विद्यमान थे। विशेषतः आदिवासी महिलाओं ने उपनिवेशवाद के विरुद्ध जितना संघर्ष किया, वह भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का एक अदृश्य, किंतु अत्यंत महत्वपूर्ण अध्याय है।

जल-जंगल-जमीन की रक्षा में संघर्ष

अंग्रेजों ने 18वीं और 19वीं शताब्दी में जंगल अधिनियम, भूमि अधिनियम और खनन कानूनों के माध्यम से आदिवासी समुदायों को उनके पारंपरिक अधिकारों से वंचित करना शुरू किया। इन बदलावों से सबसे अधिक प्रभावित महिलाएं हुईं, क्योंकि जंगल और ज़मीन से उनका जीवन सीधे जुड़ा था। जब ब्रिटिश अधिकारियों और ज़मींदारों ने जंगलों पर कब्ज़ा करना शुरू किया, तब महिलाओं ने सामूहिक रूप से विरोध प्रदर्शन, मोर्चा, और हिंसक प्रतिरोध भी किया। वे जंगलों में बैठ गईं, पेड़ों को काटने से रोका, और पुलिस से संघर्ष किया।

प्रमुख आंदोलनों में महिलाओं की भागीदारी

(i) **संथाल विद्रोह (1855-56):** फूलो-झानो मुर्मू जैसी महिलाएं इस विद्रोह में पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर लड़ीं। उन्होंने न केवल लड़ाई में भाग लिया बल्कि गांवों की रक्षा, सैनिकों को भोजन देना, घायलों की देखभाल और आंदोलन का प्रचार करने जैसे महत्वपूर्ण कार्य किए।

(ii) **बिरसा मुंडा का उलगुलान (1895-1900):** बिरसा आंदोलन में महिलाएं बड़ी संख्या में जुड़ीं। उन्होंने धार्मिक-सामाजिक सुधारों को अपनाया, शराब के विरोध में मुहिम चलाई, और आंदोलन को गांव-गांव तक पहुंचाया। सीतो मुंडा, रूपा मुंडा, और मंगरी सोय जैसी महिलाएं इस आंदोलन की सशक्त स्तंभ बनीं।

(iii) **खासी और गारो पहाड़ियों का आंदोलन (उत्तर-पूर्व भारत):** मेघालय के खासी और गारो समुदायों में महिलाओं ने ब्रिटिश भूमि नीतियों के खिलाफ विरोध जताया। जब खासी राजा को अंग्रेजों ने हटाने का प्रयास किया, तो महिलाओं ने महलों की रक्षा की और अंग्रेज सैनिकों से टकराईं।

(iv) तेलंगाना किसान आंदोलन (1946–51) यह आंदोलन ब्रिटिश सामंतवाद और निजामशाही के खिलाफ था। गोदावरी घाटी की आदिवासी महिलाओं ने हथियार उठाए, गुरिल्ला युद्ध में भाग लिया, और गांवों की सामूहिक समितियों का संचालन किया।

सामाजिक-सांस्कृतिक विरोध

अंग्रेजों ने मिशनरी गतिविधियों के माध्यम से आदिवासी धर्म, जीवन शैली, और संस्कृति को बदलने की कोशिश की। उन्होंने पारंपरिक देवी-देवताओं, पूजा पद्धतियों और भाषा को 'असभ्य' कहा। इसके विरोध में आदिवासी महिलाओं ने अपनी सांस्कृतिक पहचान को बनाए रखने के लिए भी संघर्ष किया। महिलाओं ने परंपरागत वेशभूषा, गीत, नृत्य और त्योहारों के माध्यम से सांस्कृतिक प्रतिरोध को जीवित रखा। उन्होंने अपने बच्चों को संथाली, मुंडारी, कुडुख जैसी भाषाओं में शिक्षित किया, ताकि अंग्रेजी प्रभाव को रोका जा सके।

ब्रिटिश पुलिस और जमींदारों ने आदिवासी विद्रोहों को कुचलने के लिए महिलाओं को निशाना बनाया। उन्हें गिरफ्तार किया गया, बलात्कृत किया गया, मार-पीटा गया, और गांवों को जलाया गया। बावजूद इसके, महिलाओं ने झुकने से इनकार किया और आंदोलन की मशाल को जलाए रखा। कई महिलाएं अज्ञात रहीं, लेकिन उनकी बलिदान की कहानियाँ आज भी लोककथाओं और आदिवासी गीतों में जीवित हैं।

आज भी आदिवासी लोकगीतों, कहावतों और पारंपरिक नाट्य-रूपों (जैसे नटुआ, झाड़गान, जतरा) में इन स्त्रियों की वीरता के किस्से सुनाए जाते हैं। वे "माई" (मातृशक्ति) के रूप में पूजनीय हैं जो जंगल की रक्षक, धरती की देवी और समुदाय की पहरेदार बनकर उभरीं। उपनिवेशवाद के विरुद्ध आदिवासी महिलाओं का संघर्ष भारतीय इतिहास का वह पक्ष है जिसे आधिकारिक इतिहास ने बहुत कम जगह दी है, परंतु जो वास्तव में स्वतंत्रता संग्राम की नींव था। इन महिलाओं ने अपने शरीर, बुद्धि, और आत्मा से साम्राज्यवाद के खिलाफ संघर्ष किया।

आज जब हम आदिवासी अधिकारों और महिला सशक्तिकरण की बात करते हैं, तो हमें इन वीरांगनाओं की याद अवश्य करनी चाहिए, जिन्होंने इतिहास के पन्नों में नाम भले न कमाए हों, लेकिन जमीन पर आज्ञादी की लड़ाई को जीवित रखा।

झारखंड आंदोलन (1900–2000 के बीच)

अलग राज्य की माँग को लेकर चले झारखंड आंदोलन में महिलाओं ने विभिन्न मोर्चों, रैलियों और जनसभाओं में भाग लिया। झारखंड महिला मंच, आदिवासी महिला महासंघ जैसी संस्थाओं का गठन हुआ जिसने महिलाओं को संगठित किया और नेतृत्व के लिए मंच प्रदान किया।

1992 के 73वें संविधान संशोधन के बाद पंचायतों में महिलाओं के लिए 33% आरक्षण ने नेतृत्व के नए अवसर खोले। पेसा अधिनियम (1996) ने भी ग्रामसभा में महिलाओं की भागीदारी को मजबूती दी, विशेषकर अनुसूचित क्षेत्रों में।

मिशनरियों, NGOs और सरकारी कार्यक्रमों के माध्यम से आदिवासी इलाकों में शिक्षा का प्रसार हुआ। शिक्षित आदिवासी महिलाएँ जैसे कि अनामिका सोरेन, विजया मांझी, मालती कुजूर जैसी नेताओं ने नेतृत्व की भूमिका निभाई। महिला समाख्या कार्यक्रम, सेवा (SEWA), एनईएफए (NEFA), एकता परिषद, ऑल इंडिया आदिवासी महिला संघ जैसी संस्थाओं ने महिलाओं को जागरूक, प्रशिक्षित और संगठित किया। आदिवासी महिलाओं से जुड़ी कहानियाँ, आत्मकथाएँ, वृत्तचित्रों एवं फिल्मों ने उनके संघर्ष और नेतृत्व को उजागर किया। यह एक रचनात्मक प्रेरणा स्रोत बना

जिससे अन्य महिलाओं में नेतृत्व की भावना पैदा हुई। आंगनबाड़ी, स्वयं सहायता समूह (SHG), मनरेगा, प्रधानमंत्री मातृत्व योजना, जनजातीय मंत्रालय की योजनाओं ने महिलाओं को आर्थिक रूप से सशक्त किया। आर्थिक स्वतंत्रता ने सामाजिक और राजनीतिक नेतृत्व का आधार तैयार किया। झारखंड की आदिवासी महिलाएं अपने समाज की सांस्कृतिक परंपराओं और मातृसत्तात्मक तत्वों के चलते राजनीतिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। यह प्रभाव निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है।

आदिवासी समाज की सामाजिक संरचना मूलतः सामूहिकता, परस्पर सहयोग और समानता पर आधारित है। इसमें महिलाओं को निर्णय-निर्माण की प्रक्रिया में भागीदारी दी जाती रही है, चाहे वह पारंपरिक ग्रामसभा हो या पारिवारिक निर्णय। पारंपरिक संस्थाएं जैसे परगना प्रणाली, मांझी परगनैत या ढोकलो सोहारी में भी महिलाओं की भूमिका अप्रत्यक्ष रूप से महत्वपूर्ण रही है।

यद्यपि अधिकांश झारखंडी आदिवासी समुदाय पितृसत्तात्मक हैं, कुछ समुदायों (जैसे हो, मुंडा और संताल) में मातृसत्तात्मक तत्वों की झलक मिलती है, जैसे: महिला की आर्थिक संपत्ति पर आंशिक अधिकार, पारिवारिक निर्णयों में भूमिका, भूमि एवं संसाधनों के उपयोग में महिलाओं की सहमति। इन परंपराओं ने महिलाओं को आत्मनिर्भर और आत्मविश्वासी बनाया, जो कि राजनीतिक सक्रियता की नींव बनी।

नृत्य, गीत, लोककथाओं और पर्वों के माध्यम से महिलाओं को सामूहिक नेतृत्व, संवाद और सामाजिक संदेश देने का मंच मिलता रहा है। ये परंपराएं महिलाओं को जनसंपर्क, संगठन और भाषण कला की नींव देती हैं, जो राजनीति में बेहद जरूरी गुण हैं।

आदिवासी महिलाएं ऐतिहासिक रूप से संघर्षों में भागीदार रही हैं, जैसे: 1855 का संथाल विद्रोह (फुलो-झानो की भूमिका), 1970-80 के दशक में खनन विरोधी आंदोलन (जैसे कि कोयल-कारो परियोजना में महिलाओं की भागीदारी)। इन संघर्षों में भागीदारी ने महिलाओं को संगठित होना, नेतृत्व करना और सत्ता से संवाद करना सिखाया।

इन परंपराओं के प्रभाव से अब आदिवासी महिलाएं पंचायत, ग्रामसभा और विधानसभा जैसे संस्थानों में चुनी जा रही हैं। झारखंड राज्य की कई पंचायतों में महिला मुखिया के रूप में आदिवासी महिलाएं सफलतापूर्वक कार्य कर रही हैं। महिला आरक्षण नीति (73वें संशोधन के तहत) ने परंपरागत नेतृत्व क्षमता को औपचारिक राजनीतिक प्रतिनिधित्व में बदलने का अवसर दिया।

निष्कर्ष

महिला संगठनों जैसे महिला मंडल, आदिवासी महिला एकता मंच, आदि ने इन सांस्कृतिक मूल्यों को एक नया राजनीतिक रूप दिया है। इन संगठनों में कार्यरत महिलाएं अब ग्रामसभा से लेकर जिला स्तर तक राजनीतिक मुद्दों को उठाने में सक्षम हैं। झारखंड की आदिवासी महिलाओं का राजनीतिक क्षेत्र में उभार अचानक नहीं हुआ, बल्कि वह उनकी सांस्कृतिक परंपराओं, सह-सत्तात्मक सामाजिक ढांचे और संघर्षशील ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का परिणाम है। इन मूल्यों ने उन्हें नेतृत्व, सहभागिता और निर्णय क्षमता के गुण दिए, जिनकी परिणति अब राजनीतिक प्रतिनिधित्व में हो रही है। सांस्कृतिक विरासत ने उन्हें न केवल प्रेरित किया, बल्कि सक्षम भी बनाया। कुछ जनजातियों जैसे खड़िया, हो, संथाल में महिलाएं पारंपरिक रीति-रिवाजों में निर्णायक भूमिका निभाती हैं। ये सांस्कृतिक तत्व महिला नेतृत्व के स्वाभाविक विकास के लिए उर्वर भूमि बनते हैं। झारखंड में आदिवासी महिला नेतृत्व केवल एक राजनीतिक प्रक्रिया नहीं, बल्कि एक ऐतिहासिक चेतना, सामाजिक संरचना और रचनात्मक प्रयासों का परिणाम है। जहाँ एक ओर

औपनिवेशिक दमन और आंदोलन ने उनके भीतर राजनीतिक जागरूकता को जन्म दिया, वहीं दूसरी ओर शिक्षा, सामाजिक संगठन और आर्थिक सशक्तिकरण ने उन्हें नेतृत्व की भूमिका निभाने के लिए सक्षम बनाया।

संदर्भ सूची

1. अर्चना चौधरी (2012) – ट्राइबल वूमेन इन इंडिया: सोशल-इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल स्टेटस
2. अरुण कुमार घोष (2008) – आदिवासी महिलाएँ और विकास
3. वर्जिनियस खाखा (2005) – आदिवासी मुद्दे और पहचान की राजनीति
4. राजेश्वर महतो (2015) – झारखंड के ग्रामीण क्षेत्रों में महिला मुखिया की प्रशासनिक क्षमता (राँची विश्वविद्यालय, शोध प्रबंध)
5. निर्मला भुज (1999) – नई पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं का अनुभव